भारत में पंचायती राज का इतिहासः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डा0 मौ0 उजैर
पीएच0डी0 (समाजशास्त्र)

डा0 आर0के0 ठाकुर
एसोसिएट प्रोफेसर
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

सारांश

लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास की दिशा में भारत एक अग्रणी देश माना जाता है, क्योंकि भारत में पंचायती राज की जड़े काफी गहरी हैं। लोकतन्त्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला और उसकी सफलता की सबसे अधिक सम्भावना स्थानीय स्वायत शासन का संचालन है। लोकतान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में पंचायती राज ही वह माध्यम है, जो शासन को आमजन के दरवाजे तक लाता है। वर्तमान समय में पंचायती राज का जो स्वरूप है, उसका उद्भव कब और कैसे हुआ इसका सही उत्तर देना तो कठिन है, लेकिन उपलब्ध इतिहास के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में पंच परमेश्वर की आवधारणा के साथ ही भारत में पंचायती राज की नींव पड़ चुकी थी। इस रूप में भारत के लिए पंचायती राज एक अति प्राचीन संस्था है।

प्रस्तावना–

स्थानीय सरकार को मानव की मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिक आवश्यकता के रूप में रेखांकित किया गया है। ''मानव की सदैव यह इच्छा रही है कि जो भी वह उसके स्वयं के द्वारा शासित होनी चाहिए। वह कभी यह पसन्द नहीं करता है कि उसके सार्वजनिक मामलों का निर्णय कोई और करे। मानव मन की यही इच्छा अति प्राचीन काल से स्थानीय संस्थाओं के विकास का अन्तर्निहित दर्शन रही है।

वर्तमान समय में पंचायती राज व्यवस्था स्थानीय प्रशासन का अभिन्न अंग बन चुकी है। इस व्यवस्था का उद्भव कब हुआ तथा इसका तात्कालिक स्वरूप क्या था? इसके बारे में कहना कठिन है। ''यह अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि जब मानव समुदाय का उदय हुआ, लगभग उसी समय से पंचायत व्यवस्था का उद्भव भी हुआ होगा। पांच व्यक्तियों की सभा एक अति प्राचीन संस्था है, जिसका अस्तित्व अनेक राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के पश्चात् भी बना रहा है।'' वस्तुतः वर्तमान में कार्यरत पंचायत राज जैसी संस्था की भारत में एक अनवरत परम्परा रही है।

लेख का उद्देश्य–

लेख का उद्देश्य भारत में पंचायती राज का ऐतिहासिक विकास विश्लेषण करना है।

अध्ययन विधि–

प्रस्तुत लेख विश्लेषणात्मक है, जो द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है।

''वैदिक साहित्य में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संगठित व्यवस्था के कुछ सन्दर्भ मिलते हैं। उस समय में ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई की जिसका मुखिया ''ग्रामिणी'' कहलाती थी।''[1] ग्रामिणी ग्राम के श्रेष्ठ एवं वयोवृद्ध लोगों से सलाह कर अपना कार्य करती थी। यही ग्राम पंचायत का आदिम स्वरूप था। उस समय कृषि एवं पशुपालन प्रमुख व्यवसाय थे। अतः ग्रामों का नगरों की अपेक्षा अधिक महत्व था और यातायात की कठिनाई के कारण प्रत्येक ग्राम स्वावलंबी होता था। भूमि का बंटवारा, सिंचाई के साधनों का प्रबन्ध, चरागाहों की देखभाल, मेले–उत्सवों का आयोजन, आपसी झगड़ों

का फैसला इस प्रकार के सभी कार्य ग्राम के लोग स्वयं कर लेते थे। ग्राम की रक्षा एवं मालगुज़ारीवसूल करना भी ग्रामिणी एवं पंचायत का कार्य था।

मनुस्मृति के अनुसार, ''ग्रामिक ग्रामीण शासन के लिए उत्तरदायी होता था। इस पदाधिकारी का मुख्य कार्य ग्रामवासियों से करो को एकत्रित करना था। यही ग्राम में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए भी उत्तरदायी था।'' कौटिल्य का ''अर्थशास्त्र'' मौर्यकाल में प्रचलित ग्रामीण प्रशासन की व्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रदान करता है। कौटिल्य के अनुसार प्रत्येक ग्राम का शासक पृथक–पृथक होता था। ग्राम के शासन प्रमुख को ''ग्रामिक'' कहते थे। कौटिल्य का मत था कि 10 ग्रामों के मध्य ''संग्रहण'' 200 ग्रामों के मध्य ''स्थानीय़'' नामक स्थान की स्थापना की जानी चाहिए।''[2]

मध्य युग में गांव के मुखिया के नाम थे– मालवा प्रदेश में पट्टकील, उत्तर में ग्रामपति या ग्रामिक, दक्षिण में ग्रामकट पट्टकील शब्द से ही आधुनिक शब्द पटेल निकला है। कुछ शिलालेखों में महत्तर शब्द भी आया है। कोंकण प्रदेश में अभी तक महत्ते शब्द प्रयुक्त होता है। मुखिया के नीचे पंच या गांव के पांच अधिकरी थे। महाभारत (सभापर्व) में इनका नाम समाहर्ता, सन्निधाता, गणक, लेखक एवं साक्षी थे।''

''मध्यकाल में प्रत्येक ग्रामकी एक सभा होती थी, जो अपने क्षेत्र में शासन का सम्पूर्ण कार्य संभालती थी। स्थान एवं काल के भेद से ग्राम सभाओं के संगठन भिन्न प्रकार के थे। ग्राम संस्थाओं का स्वरूप छोटे–छोटे राज्यो के समान था। इसलिए वे प्रायः उन सभी कार्यों को करती थी जो राज्य किया करते थे।''

मुगलकाल में पंचायती राज –

गांव का संगठन मुस्लिम शासन (सन् 1556–1749) के दौरान भी यथावत रहा। मुगलकालीन शासन व्यवस्था में मौर्यकाल एंव गुप्तकाल की स्वशासी निकायें अभी भी स्वस्थ एवं क्रियाशील थीं। साम्राज्यों के उत्थान पतन के पश्चात भी परम्परागत अधिकारी मुखिया, लेखाकार, चौकीदार अभी सक्रिय थे। गांव प्रशासन की ईकाई अब भी थी, किन्तु इनमें थोड़ा बहुत परिवर्तन कर दिया गया था। प्रत्येक गांव में परम्परागत स्थानीय अधिकारी होते थे। महत्वपूर्ण पद मुखिया का होता था, जिसे प्रायः पटेल कहा जाता था एवं जो राजस्व संग्रहण का कार्य करता था। लेखाकार गांव के लेखों का प्रभारी होता था, कृषि पर स्वामित्व की प्रविष्टि करता था और भू–राजस्व से सम्बन्धित अभिलेखों का संरक्षण करता था। इसी प्रकार चौकीदार गांव के पुलिसमैन की भूमिका निभाता था।''[3]

एस0 वी0 सामन्त का मुस्लिम काल में पंचायतों के न्यायिक पहलू पर मत है कि गांव की सभायें मुस्लिम काल में राज्य का समर्थन करती थी, क्योंकि– हम यह देखते है कि मुस्लिम शासकों के काल में जब मुस्लिम हित अपर्याप्त रहते थे, शासकों के द्वारा पंचायतों के निर्णयों को लागू किया जाता था। यह एक ऐसा प्रमाण है जो सिद्ध करता है कि राज्य की शक्ति हमेशा गांव की सभा में निहित रहती थी।

ब्रिटिश काल में पंचायती राज –

प्रारम्भ में अंग्रेज शासकों ने ग्रामीण स्वशासन के स्थान पर अधिकारी तंत्र को प्रोत्साहित किया, ताकि भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण किया जा सके। वस्तुतः ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत गांवो की आत्मनिर्भरता की व्यवस्था नष्ट हो गयी थी और पंचायत व्यवस्था भी पूर्णताः शिथिल हो गयी थी।''[4]

''कालान्तर में अंग्रेज शासकों ने स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के प्रयास किए। इन प्रयासों में वायसराय लार्ड रिपन का सन् 1882 का प्रस्ताव उल्लेखनीय है, जिसके द्वारा ब्रिटिश शासन के अधीन समस्त गांवों तक कानूनी रूप से स्थानीय स्वशासन का विस्तार किया गया।''

इसके पश्चात 1907 में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग ने भी ग्रामीण प्रसाशन एवं प्रबन्ध के लिये पंचायत संस्थाओं को आवश्यक बताया। इसके पश्चात भारत सरकार अधिनियम 1919 निर्मित हुआ। किन्तु धनाभाव, राजनैतिक हस्ताक्षेप आदि विभिन्न कारणों से स्थानीय स्वायत शासन के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी। 1935 के भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात् प्रान्तीय स्वायत्ता का भी श्री गणेश हुआ। जिला बोर्डो के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया गया तथा जिलाधीश को जिला बोर्ड का प्रमुख कार्याधिकारी नियुक्त किया गया। ऐसा कर दिये जाने से जिला बोर्ड परामर्शदात्री संस्था न रहकर एक प्रमुख प्रशासकीय संस्था बन गई।

''भारत शासन अधिनियम 1935 के अन्तर्गत 1937 में लोकप्रिय मंत्रीमण्डलों का निर्माण हुआ और उन्होने संस्थाओं को जनता का वास्तविक प्रतिनिधि बनाने के लिये निर्माण का कार्य हाथ में ले लिया। स्थानीय शासन के इतिहास में यह सन् 1939 से सन् 1946 तक की अवधि ''अन्धकार का काल (डार्क पीरियड) मानी जाती है।'' ब्रिटिश भारत में प्राधिकारियों द्वारा इस काल के दौरान ग्राम पंचायते पूर्णतया उपेक्षित या तिरस्कृत की गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायती राज –

सन् 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात नेतृत्व उन व्यक्तियों के सशक्त हाथों में था जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपना सर्वस्व न्योंछावर कर दिया था अथवा जो स्वतंत्रता का सही अर्थ समझते थे तथा महात्मा गॉधी के आदर्शों के अनुसार भारत का निर्माण करना चाहते थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में स्थानीय स्वशासन की दिशा में एक नई पहल प्रारम्भ हुई 26 जनवरी 1950 को भारत में नवनिर्मित संविधान प्रवर्तित हुआ। संविधान में स्थानीय स्वशासन को राज्यों की कार्यसूची के अन्तर्गत रखा गया तथा राज्यों के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में कहा गया कि ''राज्य का कर्तव्य होगा किवह ग्राम पंचायतों का इस ढंग से संगठन करें किवे स्थानीय स्वशासन की इकाईयों के रूप में कार्य कर सके''।

समुदायिक विकास कार्यक्रम –

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लोकतांत्रिक विक्रेन्दीकरण की दिशा में पहला प्रयास सामुदायिक विकास कार्यक्रम था, जो 2 अक्टूबर 1952 से प्रारम्भ किया गया। प्रो0 रजनी कोठारी जैसे विद्वानों का मत है सामुदायिक विकास कार्यक्रम नौकरशाही द्वारा संचालित होने के कारण विफल हो गया। इन कार्यक्रमों के संचालन में स्थानीय लोगों को भागीदार नहीं बनाया गया, जबकि स्थानीय समस्याओं तथा तत्सम्बन्धी समस्याओं का ज्ञान स्थानीय जनता को ही अधिक होता है। वे ही स्थानीय स्तर पर उनका उचित समाधान कर सकते है– ''नौकरशाही द्वारा संचालित होने के कारण इसमें गांवों के विकास के बजाय सामुदायिक विकास की मशीनरी के विस्तार पर ही ज्यादा जोर दिया गया। सरकारी तंत्र के जरिये गांव के लोगो की मनोवृत्ति की आशा की गई, नतीजा यह हुआ कि गांवो की उन्नति के खुद प्रयत्न करने के बजाय ग्रामीण जनता सरकार का मुंह देखती रही।''[5]

बलवन्तराय मेहता समिति – (1957)

1957 में बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन सामुदायिक कार्यक्रम की समीक्षा हेतु किया गया। दिसम्बर 1957 में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में समिति ने स्पष्ट किया कि देश के विकास कार्यक्रम प्रशासन के लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के माध्यम से सफल हो सकते हैं। इस हेतु समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित त्रिस्तरीय पंचायत राज को स्थापित करने की अनुशंसा की। ये त्रि–स्तर है– ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य स्तर पर पंचायत समिति तथा शीर्ष स्तर पर जिला परिषद्। साथ ही इस त्रि–स्तरीय पंचायती राज की सफलता के लिये तीन बिन्दुओं को

आवश्यक माना– सत्ता का विकेन्द्रीकरण,विकेन्द्रीकृत इकाईयों को विकास के लिए पर्याप्त साधन प्रदान करना एवं कर्तव्य की समझ तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था।

''मेहता समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर जनवरी 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा विचार किया गया। समिति ने सिफारिशों के अनुमोदन के साथ यह सुझाव दिया कि ''प्रत्येक राज्य को ऐसी पंचायत राज व्यवस्था का विकास करना चाहिए जो राज्य में विद्यमान विशिष्ट स्थितियों के अनुरूप हो।''[6]

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार एवं बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के अनुरूप पंचायत राज व्यवस्था का 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में शुभारम्भ किया गया। इसी दिन आन्ध्रप्रदेश में भी पंचायती राज का शुभारम्भ किया गया। आगामी 2–3 वर्षो में देश के अधिकांश राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू कर दी गई।

1959 के पश्चात लगभग एक दशक तक पंचायती राज की प्रगति की दिशा में भारत सरकार तथा विभिन्न राज्यों द्वारा कदम उठाये जाते रहे। किन्तु इसके पश्चात पंचायत राज एवं लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रणाली के प्रति उत्साह मंद पड़ गया और यह उत्साह केवल पांच वर्ष (1959–1964) तक रहा। इसके बाद ठहराव का चरण (1965–1969) आया। अंतिमतः ये संस्थाये मरणासन्न हो गई। इस प्रकार 1969–1977 का काल पंचायती राज संस्थाओं के लिये पतन का काल रहा।

अशोक मेहता समिति – (1977)

सन् 1977 में कांग्रेस के स्थान पर केन्द्र में पदारूढ़ जनता सरकार स्थानीय स्तर के निकायों की शक्तियों एवं कार्यों का विकेन्द्रीकरण करने की इच्छुक थी। फलतः उसने पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने के लिये सुझाव देने हेतु दिसम्बर 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अगस्त 1978 में 11 अध्यायों तथा 300 पृष्ठों की एक विस्तृत रिपोर्ट पेश की।

''समिति के सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि पंचायती राज की द्वि–स्तरीय पद्धति का निर्माण किया जाये। राज्य स्तर से नीचे विकेन्द्रीकरण का पहला बिन्दू जिला है, जहाँ ग्रामीण विकास के लिये आवश्यक उच्च कोटि का तकनीकी ज्ञान उपलब्ध है। जिला परिषद के नीचे एक मण्डल पंचायत बनाने का प्रस्ताव किया गया, जिसे कई गांवों को मिलाकर बनाना था।''

अशोक मेहता समिति ने देश में पंचायती राज के आकार एवं स्थायित्व के निमित वित्तीय एवं प्रशासनिक प्रकृति की अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की, किन्तु रिपोर्ट के क्रियान्वयन के पूर्व ही जनता सरकार का पतन हो गया। तत्पश्चात् 1980 में सत्तारूढ़ कांग्रेस सरकार ने जनता सरकार द्वारा गठित अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट राजनीतिक दृष्टि से स्वीकार्य नहीं की।

जी0 वी0 के0 राव समिति – (1985)

योजना आयोग के परामर्श से राव समिति ने रिपोर्ट तैयार की। इस समिति ने प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की एक साहसी योजना की सिफारिश की। इस योजना में जिला स्तर का निकाय केन्द्रीय महत्व का बनाया गया। समिति का यह मत था कि आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की प्राप्ति की जिम्मेदारी केवल सरकारी मशीनरी (नौकरशाही) पर नहीं थोपनी चाहिए। ''यह आवश्यक है कि स्थानीय लोगों व उनके प्रतिनिधियों को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को तैयार करने व उनके क्रियान्वयन में प्रभावी रूप से सहभागी बनाया जाये। समिति ने यह सिफारिश की कि पंचायती राज संस्थाओं को सक्रिय बनाया जाये तथा उन्हें पूरा आवश्यक सहयोग प्रदान किया जाये ताकि वे जन समस्याओं के निराकरण की प्रभावी संस्थायें बन सके। अतः इन संस्थाओं के चुनाव नियमित रूप से कराये जायें''

समिति ने यह भी सिफारिश की कि जिले को नीति नियोजन (पॉलिसी प्लानिंग) व कार्यक्रम क्रियान्वन की आधारभूत इकाई बनाया जायें। इसलिए जिला परिषद को समस्त विकास कार्यक्रमों के प्रबंध के लिए प्रमुख निकाय बनाना चाहिए ताकि उनका क्रियान्वयन उसी स्तर पर हो सके। समिति के मत में जिला परिषद का कार्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्वाचित अनेक उपसमितियों द्वारा सम्पन्न होना चाहिए ताकि सहभागी लोकतन्त्र पुष्पित एवं पल्लवित हो सके। ''जिला एवं नीचे के स्तर की पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास योजनाओं के नियोजन व मानीटरिंग में प्रभावी भूमिका प्रदान की जानी चाहिए। समिति की यह महत्वपूर्ण सिफारिश थी कि जिला बजट की अवधारणा शीध्रताशीध्र प्रयुक्त की जाये।''

एल0 एम0 सिंधवी समिति – (1986)

1986 में एल0 एम0 सिंधवी समिति की रिपोर्ट ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रेरणा से प्रस्तुत की गई। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की वृद्धि और विकास पर दृष्टिपात करने के पश्चात् सिंधवी समिति ने लगभग विस्मृत ग्राम सभा को पुनर्जीवित किया जिसमें एक गांव के सभी निवासियों को सम्मिलित किया तथा इसे ''प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के अवतार'' की संज्ञा दी। समिति ने पंचायतीराज को संवैधानिक दर्जा देने का सुझाव दिया। उसने सुझाव दिया कि भारत के संविधान में एक पृथक अध्याय पंचायत राज संस्थाओं की पहचान एवं सम्पूर्णता को बनाने के लिए जोड़ा जाये ताकि इन संस्थाओं को तार्किक व आधारगत रूप में अतिक्रमणीय बनाया जा सके। समिति ने गांवों के समूह के लिए न्याय पंचायत की स्थापना का सुझाव दिया। जहाँ तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में राजनीतिक दलों की सहभागिता का प्रश्न है, समिति ने स्वयं कोई सुनिश्चित अनुशंसा नहीं की और ऐसे सरकारी निर्णय की अपेक्षा की जो व्यवहारिक हो तथा राष्ट्र के विभिन्न दलों की सहमति से लिया गया हो''।[7]

पंचायती राज संस्थाओं को संवैधनिक दर्जा देने के उद्देश्य से 1989 में राजीव गांधी सरकार ने 64वॉ संविधान संशोधन संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया। लेकिन अनेक राजनीतिक कारणों से यह संशोधन विधेयक पारित नहीं हो सका।

73 वाँ संविधान संशोधन –

पी0 वी0 नरसिम्हाराव सरकार ने राजीव गांधी सरकार द्वारा तैयार पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित विधेयक को संशोधित कर दिसम्बर 1992 में 73 वें संविधान संशोधन के रूप में संसद से पारित करवाया। यह 73 वॉ संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल 1993 से लागू किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग 9 जोड़ा गया है, जिसका शीर्षक ''पंचायत'' है। इसके द्वारा अनुच्छेद 243 में पंचायतों से सम्बन्धित प्रवधान किये गये, जो निम्नलिखित है–

1. ''ग्रामसभा'' एक ऐसा निकाय होगा, जिसमें ग्राम स्तर पर पंचायत क्षेत्र में मतदाताओ के रूप में पंजीकृत सभी व्यक्ति शामिल होंगे। ग्राम सभा राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित शक्तियों तथा कार्यों को सम्पन्न करेंगी।''
2. ''प्रत्येक राज्य में ग्राम मध्यवर्ती व जिला स्तर पर पंचायतों का गठन किया जायेगा।''
3. ''राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अनुरूप पंचायतो का गठन किया जायेगा।''
4. ''प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए सीटे आरक्षित होगीं। यह सीटें पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात मे निर्धारित की जायेगी। यह सीटे एक पंचायत में चक्रानुक्रम से विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रो में आरक्षित की जायेगी।''[8]

5. ''प्रत्येक पंचायत की कार्याविधि 5 वर्ष होगी। इसकी कार्याविधि की समाप्ति के पूर्व ही नए चुनाव कराये जायेंगे। यदि पंचायत को पाँच वर्ष से पूर्व ही भंग कर दिया जाता है,तो 6 माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व चुनाव कराये जायेंगे।[9]
6. ''राज्य विधान मण्डल विधि द्वारा पंचायतो को ऐसी शक्तियॉ प्रदान करेंगे, जो कि उन्हें स्वशासन की संस्था के रूप में कार्यरत बना सके तथा जिनसे पंचायते आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाए तैयार कर सके एवं 11 वीं अनुसूची मे समाहित विषयो सहित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को क्रियान्वित कर सके।
7. ''राज्य विधान मण्डल पंचायतों को विनिर्दिष्ट कर, शुल्क, चुँगी एवं फीस लगाने एवं संग्रहित करने के लिए अधिकृत करेगा। सम्बन्धित राज्य सरकार राज्य की आकस्मिक निधि से पंचायत को पर्याप्त सहायता एवं अनुदान देगी।
8. ''राज्यों के राज्यपाल इस अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के अन्दर तथा इसके बाद प्रत्येक 5 वर्ष पश्चात् पंचायतो की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और समुचित सिफारिशें करने के लिये आयोग का गठन करेगें। वे सिफारिशें राज्यों की संचित निधि से सहायता अनुदान आदि से सम्बंधित होगी। राज्यपाल इन सिफारिशों को इस व्याख्या के साथ लागू करने के लिए क्या प्रयत्न किये गए, राज्य विधान मण्डल मे रखा जायेगा।''
9. ''राज्य विधान मण्डल विधि द्वारा पंचायतों द्वारा खाते तैयार करने तथा इन खातों की लेखा परीक्षा सम्बंधित प्रावधानों का निर्माण करेगा।''[10]
10. ''राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य चुनाव आयुक्त से संरचित राज्य चुनाव आयोग ही मतदाता सूचियों को तैयार करने में अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण रखेगा तथा वही पंचायतो के समस्त चनावों का संचालन करवायेगा।

इस प्रकार 73 वें संविधान संशोधन द्वारा मृतप्रायः पंचायतों को जीवन प्रदान किया गया है। संवैधानिक दर्जा दिये जाने से उनका अस्तित्व सुरक्षित हो गया है। इस अधिनियम की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इससे पंचायतों के गठन में एकरूपता आयेगी और इनके निर्वाचन नियमित होंगे। वास्तव में पिछले 15 वर्षों से राज्यों में ऐसा हुआ भी है।

73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को न केवल प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए बल्कि वित्तीय संसाधनों की गारण्टी भी प्राप्त हुई, जिससे ग्रामीण विकास में सहायता प्राप्त हो सकी। इस तरह नया पंचायती राज कानून पूर्णतः लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण चुनाव की वैधानिक अनिवार्यता, अनुपातिक प्रतिनिधित्व, ऊर्ध्वगामी नियोजन प्रक्रिया के साथ समायोजन की विषेशता रखता है।

इस प्रकार हम पाते है कि पंचायती राज का वर्तमान स्वरूप एतिहासिक विकास का परिणाम है।

निष्कर्ष–

लोकतंत्रीय राजनैतिक व्यवस्था में पंचायती राज हीवह माध्यम है जो शासन को सामान्यजन के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है। पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय लोगों की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अतः इस अर्थ में पंचायती राज संस्थायें स्थानीय जनसामान्य को शासन कार्य में भागीदारीता की प्रक्रिया के माध्यम से लोगों को प्रत्यक्षतः एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वतः ही प्रदान करती रहती है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त कर ये स्थानीय जन प्रतिनिधि ही कालान्तर में विधानसभ एवं संसद का प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ–

1. एम0पी0 शर्मा ''रिफार्म ऑफ लोकल सेल्फ गर्वमेन्ट 1989 इण्डियन जरनल ऑफ पब्लिक एडमिनिर्स्टेशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं0– 110.
2. प्रभुदत्त शर्मा द्वारा उद्धृत ''ग्रामीण स्थानीय प्रशासन'' 1986 विश्वभारती पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं0–119.
3. एच0आर0 माहेश्वरी ''भारत में स्थानीय प्रशासन 1984 लक्ष्मी नरायण अग्रवाल एजुकेशनल पब्लिशर्स, आगरा, पृष्ठ सं0– 291.
4. अशोक वाजपेयी ''पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास'' 1997, पृष्ठ सं0– 210.
5. रजनी कोठारी ''पंचयती राज पुनरावलोकन'' 1961 इ0 पी0 डब्लू0 मुम्बई, पृष्ठ सं0– 658.
6. जी0 पलानी थुराई ''ग्रास रूट डेमोक्रेसी इन इण्डियन सोसाइटी 2000 कांसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, पृष्ठ सं0– 41.
7. राहुल मुदगल ''लोकल सेल्फ गवर्मेन्ट इन इण्डिया'' 1985 बुक एन्क्लेव पब्लिशर्स जयपुर राजस्थान, पृष्ठ सं0– 18.
8. एस0एस0 सुन्द्रम मीनाश्री ''डिसेन्ट्रलाइजेशन इन डेवलपिंग कन्ट्रीज'' 1996 कांसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी दिल्ली, पृष्ठ सं0–48.
9. सत्ता के विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित शासन आदेशों का संकलन (प्रथम खण्ड) पंचायती राज विभाग उत्तर प्रदेश शासन 1999, पृष्ठ सं0– 19.
10. यू0 के0 शर्मा ''न्यू पंचायती राज सिस्टम'' 1998 प्रिन्टवैल जयपुर पब्लिशर्स, पृष्ठ सं0– 110.